

# विशिष्टाद्वैतवाद में मोक्ष विचार



पूनम शुक्ला  
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

इस दृश्यमान सासांरिक प्रपञ्च का आरम्भ जन्म से तथा अन्त मृत्यु के साथ होता है, किन्तु आत्मा नित्य है, अतः सदैव विद्यमान रहता है तथा पूर्व जन्म में किए गए कर्मों के कारण ये बन्धन में पड़ता है, अतः आत्मा एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण करता रहता है।<sup>1</sup> यह परम्परा अनवरत चलती रहती है। अविद्या के कारण आत्मा स्वयं को सासांरिक वस्तुओं एवं नश्वर देह के साथ सम्बद्ध मानती है। इस नश्वर देह से ममत्व होने के कारण आत्मा बन्धन में पड़ जाती है, जिससे उसे 'अहमस्मि' की प्रतीति होती है तथा वह दुःख, पीड़ा, शोकादि की अनुभूति करता है और यही बन्धन है। भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन के चरम पुरुषार्थ चतुष्टय की स्थापना की है।<sup>2</sup> उन मनीषियों ने अर्थ एवं काम को धर्म के साथ इस प्रकार मर्यादित किया है, जिससे वे मोक्ष प्राप्ति में साधक हो। गीता में स्वयं भगवान् कृष्ण कहते हैं, कि 'मैं वह काम हूँ जो धर्म विरुद्ध नहीं है।'<sup>3</sup>

रामानुजाचार्य मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन स्वीकार करते हैं— (1) कर्म<sup>4</sup>, (2) ज्ञान<sup>5</sup>, (3) भक्ति<sup>6</sup>। इसमें भक्ति ईश्वर प्राप्ति का अनन्य साधन है तथा कर्म एवं ज्ञान भक्ति के सहकारी है। वैष्णव सम्प्रदाय भक्ति को सर्वोच्च मानता है तथा उसके समक्ष तो स्वर्ग एवं वैष्णवों की विशेषता है।<sup>7</sup> मोक्षावस्था में भी वैष्णव भक्ति का त्याग नहीं करते अतः वे मोक्षावस्था में भी ईश्वर के साथ भेद स्वीकार करते हैं, क्योंकि भक्ति के लिए भक्त एवं भगवान् में की न कोई भेद अवश्य होना चाहिए रामानुजाचार्य के अनुसार मुमुक्षु को वर्णाश्रम धर्म विषयक सम्पूर्ण कर्मों का निर्वाह करना चाहिए। सकाम कर्म आत्मा के बन्धन का कारण है, इसके विपरीत मृत्युपर्यन्त निष्काम भाव<sup>8</sup> से वर्णाश्रम धर्म का आचरण मनुष्य के पूर्व जन्मों के कर्मों को शिथिल कर देता है, जिससे उनका चित्त निर्मल हो जाता है। तत्त्वज्ञान के माध्यम जीवात्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का बोध होता है। वह स्वयं को ईश्वर का अंश तथा ईश्वर को अपना अन्तर्यामी नियामक मानकर स्वयं के कर्मों समस्त को ईश्वरोपासना के रूप में सम्पन्न करता है। यही यथार्थ ज्ञान है। जन्म एवं मृत्यु के परे हो जाना ही मोक्ष है। जन्म एवं मृत्यु वस्तुतः शरीर के कारण है, क्योंकि कर्मफल के कारण ही इस जीवात्मा को प्राकृत शरीर से सम्बद्ध होता है। यदि कर्मफल का विनाश हो जाए, तो जीवात्मा एवं शरीर से सम्बद्ध की आवश्यकता नहीं। अतः कर्मों एवं उनके फलों का आत्यन्तिक उच्छेद ही मोक्ष है।<sup>9</sup>

अज्ञानजन्य अहं ही जीवात्मा के कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का कारण है, अतः अज्ञान के नाश से तज्जन्य अहंभाव का विनाश तदनन्तर जीवात्मा के कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व भी समाप्त हो जाता है, अतः मोक्ष अज्ञान का निरास है। जीवात्मा के कर्मों के विनाश के फलस्वरूप उसके धर्मभूतज्ञान का विकास हो जाता है तथा मोक्षावस्था में यह पूर्णतः विकसित होता है। इस ज्ञान का विषय ईश्वर का दिव्य विग्रह होता है। मुक्त जीवात्मा सर्वदा ईश्वर का प्रत्यक्ष करता है, अतः आत्म साक्षात्कार नहीं अपितु ईश्वर साक्षात्कार ही मोक्ष है। आत्मज्ञान तो कैवल्य की स्थिति है, जिससे जीवात्मा स्वयं को प्रकृति से भिन्न जानता है, तब तक वह प्रकृति की विकृति से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाता। अतः ईश्वर साक्षात्कार यौगिक अथवा प्राकृतिक प्रत्यक्ष नहीं है। इसके लिए जीवात्मा को ज्ञानी अथवा केवली होना अनिवार्य है। अतः यह सिद्ध होता है कि मोक्षावस्था पूर्ण ज्ञान की अवस्था है। ज्ञानवान् आत्मा को सर्वदा असीम आनन्द की अनुभूति रहती है। इस आनन्द के अजस्र स्रोत भगवान् के प्रति मुक्त को असीम प्रेम होता है। अतः मोक्ष ईश्वर के प्रति ऐकान्तिक प्रेम की अवस्था है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवेदान्त में प्रतिपादित पंचविधि मोक्ष स्वीकार करते हैं—

- सालोक्य मुक्ति—अर्थात् भगवान् के नित्यधाम में निवास।
- सार्विं मुक्ति—अर्थात् भगवान् के समान ऐश्वर्य भोग।
- सामीप्य मुक्ति—अर्थात् भगवान् की नित्य समीपता।
- सारूप्य मुक्ति—अर्थात् भगवान् के समान रूप।
- सायुज्य मुक्ति—अर्थात् भगवान् के विग्रह में समा जाना अर्थात् ब्रह्मरूप पा लेना।<sup>10</sup>

भागवत में मुक्ति के इन पंचविध स्वरूप को क्रमिक विकास के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तु विशिष्टाद्वैतवेदान्त केवल सायुज्य को ही मोक्ष स्वीकार करता है। ऋग्वेद एवं मुण्डकोपनिषद् में भी प्रतिपादित है कि 'एक साथ निवास करने वाले परस्पर सखावत रखने वाले दो पक्षी जीवात्मा एवं परमात्मा एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमें से एक (जीव) सुख-दुःखोपभोग करता है, जबकि दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है।<sup>11</sup> ज्ञान<sup>12</sup> एवं कर्म<sup>13</sup> दोनों एक दूसरे के पूरक है। ज्ञान एवं कर्म के द्वारा ही कर्म फलों का विनाश होता है किन्तु ज्ञान प्रारब्ध कर्मों का नाश नहीं कर सकता है। यही कारण है कि रामानुजाचार्य मृत्योपरान्त मोक्ष स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार यह नश्वर शरीर जब तक विद्यमान है, मुक्ति नहीं हो सकती है। यह शरीर ही बन्धन का कारण है, अतः सशरीर मोक्ष स्वीकार नहीं करता है। शरीर धारण करने के समय तक हमें कर्मों से मुक्ति नहीं मिल सकती है।<sup>14</sup> अज्ञानयुक्त कर्म परम्परा ही जीवन को जन्म एवं मृत्यु के चक्र में बाँधती है। इस कर्मरूप अविद्या के नाश हेतु शरीर पात अनिवार्य है। जितना कि यह कहना कि मेरी माता वन्ध्या है।<sup>15</sup>

रामानुजाचार्य का कथन है कि उपनिषद् के अर्थमात्र के ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। मुमुक्षु के वेदान्त का अध्ययन करना चाहिए। जिससे वह संसार का यथार्थज्ञान प्राप्त कर आत्मा को शरीर से भिन्न समझने लगता है। जिससे उसे यह ज्ञान हो जाता है, कि आत्मा ईश्वर का अंश है। तथा सृष्टि का स्रष्टा, पालक एवं संहारक है। मुक्ति केवल वेदान्त के अध्ययन मात्र से नहीं प्राप्त हो सकती, इसके लिए भक्ति आवश्यक है। कर्मसक्ति तथा फलासक्ति का आत्यन्तिक उच्छेद हृदय में ईश्वर की उपस्थिति से ही सम्भव है। ईश्वर की दया आत्मा की मोक्ष प्राप्ति का साधन है। ज्ञान एवं कर्म से भक्ति का उदय होता है।<sup>16</sup> गहरी भक्ति एवं शरणागति से प्रसन्न ईश्वर जीव के अविद्या एवं संचित कर्मों का विनाश कर देते हैं फलतः जीव के ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है।

रामानुजाचार्य मोक्ष प्राप्ति हेतु जीवात्मा का पूर्ण विनाश स्वीकार नहीं करते हैं। ईश्वर के साथ मुक्त आत्मा का साहचर्य तो होता है, किन्तु एकत्व अथवा तादात्म्य नहीं। ईश्वर सृष्टिकर्ता है, जबकि जीवात्मा कभी सृष्टि कर्ता नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के ज्ञान, बल आदि गुणों का संकोच विकास नहीं हो पाता, जबकि मुक्तात्मा के ज्ञानादि का संकोच विकास पहले ही हो चुका होता है। वे केवल कालक्रम से ईश्वरोपासना के द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा परमात्मा के साथ जीव का साहचर्य उसकी स्वभाविक स्थिति है। मुक्त जीव के द्वारा मोक्ष की स्थिति किसी नवीन फल की उत्पत्ति नहीं है, अपितु मोक्ष तो पूर्व सिद्ध स्थिति की पुनःस्थापना मात्र है।

जीव मुक्तावस्था में ब्रह्म के स्वभाव को प्राप्त करके उसके साथ अभेदी हो जाता है। अज्ञानतावश जीव का ब्रह्म से भेद हो जाता है।<sup>17</sup> रामानुजाचार्य के अभेदी से तात्पर्य तादात्म्य से नहीं अपितु भेद रहित से है।<sup>18</sup> वह मुक्तात्मा ब्रह्म के अपहृतपापात्म आदि अष्टगुणों से सम्पन्न होता है। जिस प्रकार ज्योत्स्ना मणि के मल का प्रक्षालन नहीं करती है, उसी प्रकार कर्म बन्धन के क्षय होने पर ब्रह्मसाक्षात्कारानुभव से मुक्तात्मा के उन गुणों का विकास होता है।<sup>19</sup> इस स्थिति में जीव दिव्याकार, नित्य, निर्दोष, शुभगुण निधि, उभयविभूतिनाथ परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमन्नारायण का पूर्णतः अनुभव करता हुआ आनन्दित रहता है और रामानुजाचार्य जीव की यही स्थिति मोक्ष स्वीकार करते हैं।<sup>20</sup> जीवात्मा के मुक्त होने पर उसके संकल्पमात्र से ही समस्त भोग उपस्थित हो जाते हैं। ये भोग और ऐश्वर्य परमात्मा के ही अधीन हैं, इसे किसी अन्य प्रयत्न की अपेक्षा नहीं होती है। अप्रतिहत संकल्प के कारण ही मुक्तात्मा को

'अनन्याधिपति' अथवा 'स्वराट्' कहते हैं।<sup>21</sup> मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् जीवात्मा का इहलोक में पुनरागमन नहीं होता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि 'ब्रह्मलोक सहित ये समस्त लोक नश्वर हैं, किन्तु जो मुझे प्राप्त करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।<sup>22</sup> श्रुतियों में भी जीवात्मा को जन्मादि विकारों से परे बताया गया है।<sup>23</sup> अपितु वह पूर्ववत् अपने यथार्थस्वरूप में विद्यमान रहता है। मुक्तावस्था में जीवात्मा परमपुरुष की साम्यावस्था पाकर सत्यसंकल्प से परिपूर्ण हो जाता है।<sup>24</sup> तथा अपने संकल्प के अनुसार ब्रह्मानन्द के भोग हेतु वह शरीर ग्रहण करने तथा त्याग करने में समर्थ होता है।<sup>25</sup> रामानुजाचार्य के अनुसार मोक्षावस्था में जीव दो विशिष्टताओं को छोड़कर अन्य समस्त पूर्णताओं से युक्त होता है। प्रथम यह कि, जीवात्मा अणु परिमाण है, जबकि परमात्मा विभू तथा सर्वव्यापी है तथा द्वितीय यह कि, मुक्तात्मा का जगत् की सृजनात्मक गतिविधियों पर कोई अधिकार नहीं है। समस्त दोषों से मुक्त हो जाने पर जीवात्मा का ऐश्वर्य ब्रह्म के समान हो जाएगा अतः यदि आत्मा को सृजन का अधिकार मिल जाएगा तो उसमें ब्रह्म का लक्षण ही अनुपपन्न हो जाएगा, क्योंकि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशान्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।'<sup>26</sup> इत्यादि श्रुति के द्वारा ब्रह्म को ही लक्षित किया जाता है।<sup>27</sup> अतः सृष्टि की सृजनात्मक गतिविधियों पर एकमात्र ब्रह्म का ही अधिकार है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्मात्मैकत्व भाव मोक्ष है। यह जीव और ब्रह्म की अभिन्नता को सूचित करता है। किन्तु रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्मभाव को प्राप्त करना ही मुक्ति है। 'ब्रह्मणोभावः न तु स्वरूपैक्यं।' यह ब्रह्म के एकत्व का नहीं अपितु प्रकारत्व का बोधक है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।  
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ भगवद्गीता— (2 / 22)
2. धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे भरतर्षभ । (महाभारत)
3. धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ । भगवद्गीता— (7 / 11) (3 / 9)
4. यज्ञादिशास्त्रीय—कर्मशेषभूताद् द्रव्यार्जनादेःकर्मणोऽन्यत्रात्मीय—प्रयोजनशेषभूते  
कर्मणि क्रियामाणेऽयं लोकः कर्मबन्धनो भवति । गीता भाष्य—
5. श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाऽज्ञानाद्वयानं विशिष्यते ।  
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ गीता (8 / 12)
6. अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।  
परं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ गीता— (8 / 8)
7. ये तु धर्मामृष्टमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।  
श्रद्धानां मत्परया भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥— गीता (12 / 20)
8. अनासत्कस्य विषयान्यथार्हमुपयुंजतः । (भक्तिरसामृत सिन्धु—2 / 255)
9. अतः कर्मणा संबद्धस्य परं ज्योतिरूपसंपद्य बन्धनिवृत्तिया मुक्तिः स्वेन  
रूपेणाभिनिष्पत्तिरूच्यते । स्वरूपाविर्भावेष्यभिनिष्पत्ति शब्दो दृश्यते,  
मुक्तयाऽयमर्थो निष्पद्यते इत्यादिषु ।— श्री भाष्य (4 / 4 / 2)
10. सालोक्यसार्षिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।  
दीयमानं न गृहणन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ श्रीमद्भागवतमहापुराण— (3 / 29 / 13)
11. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।  
तयोरन्यः पिप्लं स्वाद्वयनश्ननन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋग्वेद (1 / 164 / 20) मुण्डकोपनिषद् (3 / 1 / 1)
12. तमेवं विदित्वाऽतिमष्ट्युमेति ।  
श्वेताश्वतरोपनिषद्— (6 / 25)
13. निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।  
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाज्ञोति किल्विषम् ॥— गीता (4 / 21)

14. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।  
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैगुणैः ॥ गीता— (3 / 5)
15. श्रीभाष्य— (1 / 1 / 4)
16. ज्ञानकर्मनुगृहीतं भक्तियोगम् ।— गीताभाष्यभूमिका
17. तद्भावभावापन्नस्तदासौ परमात्मना ।  
भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥ (विष्णुपुराण—6 / 7 / 95)
18. यदैवमापन्नः तदाऽसौ परमात्मना, अभेदी भवति भेदरहितो भवति ॥— श्री भाष्य (1 / 1 / 1)
19. श्री भाष्य (4 / 4 / 3)
20. श्री भाष्य (1 / 2 / 12)
21. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।  
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।
22. श्रीभाष्य (4 / 4 / 8—9)
23. अयं प्रत्यगात्मा आर्चिरादिनां परं ज्योतिरूपं संपद्य य दशाविशेषमापद्यते,  
स स्वरूपाविर्भाव नापूर्वाकारोत्पत्तिरूपः । — रामानुजाचार्य कृत श्रीभाष्य (4 / 4 / 1)
24. अतो मुक्तस्य सत्यसंकल्पत्वं परमपुरुषः साम्यश्च । — रामानुजाचार्य श्रीभाष्य (4 / 4 / 20)
25. अत एवं संकल्पात् उभयविषयं सशरीरमशरीरं च मुक्तम् । — (रामानुजाचार्य, श्री भाष्य (4 / 4 / 12)
26. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली— (1)
27. श्रीभाष्य (4 / 4 / 7)
28. जगद्व्यापारोवर्ज समानो ज्योतिषा । (बोधायन वृत्ति, श्रीभाष्य)